तमिलनाडु में जैन धर्म

❑ पण्डितरत्न मल्लिनाथ जैन 'शास्त्री'

प्राचीनकाल में तमिलनाडु प्रदेश में जैन धर्म का व्यापक प्रचार था। अनेक जैनाचार्यों यथा – कुंदकुंद, अकलंक, समन्तभद्र, पूज्यपाद, जिनसेन, मल्लिषेण आदि धुरंधर विद्वानों के धर्म-प्रचार की यह पावन भूमि रही है। यहाँ के श्रमणों ने अनेक नीति ग्रन्थों व अन्य विषयों की रचनाएं की। तिरुकुरल, नालडियार, अरनेरिच्चारं आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया। अनेक राजाओं ने इस धर्म को प्रोत्साहन दिया। श्रमणों एवं श्रमणियों ने जन-जन में सदाचरण, अहिंसा, व्रतनिष्ठा आदि का व्यापक प्रचार करके इस धर्म को जन धर्म बना दिया। तमिलनाडु में जैन धर्म के प्रवाह के इतिहास को प्रवाहित कर रहे है – दक्षिण के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री मल्लिनाथजी जैन 'शास्त्री'। – सम्पादक

कालचक्र

जैन धर्म विश्वधर्म है। यह अनादि है ऐसी बात है तो भगवान् ऋषभदेव के पहले भी जैन धर्म था। इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा। जब विश्व है तो उसके साथ-साथ धर्म भी है। म्लेच्छ खण्ड में धर्म नहीं रहता परंतु आर्य खंड में धर्म निरंतर रहता ही है। वहाँ तो तीर्थंकर भगवन्त जन्म लेते हैं। भूतकाल के भी चौबीस तीर्थंकर माने गये हैं। वे सब पहले हो चुके हैं। इस तरह अनादि धर्म परम्परा चलती आ रही है। कालचक्र निरंतर घूमता रहता है।

विद्वान् लोग काल को 'चक्र' के साथ समावेश करते हैं। अर्थात् चक्र जैसे घूम कर स्थान परिवर्तन करता है – वैसे काल भी परिवर्तन करता रहता है। हमेशा एक ही स्थिति पर नहीं रहता यह उसका स्वभाव है। इसे हम अपने जीवन काल में भी देखते हैं। हम स्वयं कहते हैं कि अपना जीवन-काल निकलता जा रहा है। अर्थात् यह काल परिवर्तनशील है। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि काल एक वस्तु है और उसका परिवर्तन होता रहता है। इस तरह के परिवर्तनशील काल को ही दुनिया संसार के नाम से पुकारती है। **संसरणं संसारः** अर्थात् परिवर्तन होना संसार है। यह परिवर्तन हमेशा होता रहता है। संसार का विशेषतः अर्थ यह है कि परिवर्तन होते रहना। यह परिवर्तन नया नहीं है। इसे हम अपने जीवन काल में भी देखते हैं। अर्थात् जीवन काल में उत्थान-पतन होना, इस परिवर्तन का आधार है।

उत्थान-पतन (ऊँचा-नीचा) आपस में सम्बन्ध रखता है। जहाँ पर उत्थान है वहाँ पतन भी मौजूद है। इसके उदाहरण में हम कह सकते हैं कि खेल में जो व्यक्ति गिरता है फिर वह उठता ही है। तथा चक्र का अधो-भाग ऊपर आना और ऊपर का भाग नीचे जाना स्वाभाविक है। इसी तरह उत्थान-पतन का स्वरूप भी देख सकते हैं। इसका निष्कर्ष यह है कि उत्थान-पतन वाला ही संसार है।

यह संसार जब पतन से उत्थान की ओर जाता है तब उसे **उत्सर्पिणी काल** कहते हैं। और उत्थान से पतन की ओर जब आता है तब उसे **अवत्सर्पिणी** काल कहते हैं। उत्सर्पिणी काल में मनुष्यों की आयु, शक्ति और ऊँचाई आदि अभिवृद्धि की ओर बढ़ती जाती है। अवत्सर्पिणी काल में ऊपर की सभी बातें कम होती जाती है। इसके उदाहरण में चन्द्रमा के पूर्व पक्ष और अपर पक्ष कला की उपमा दे सकते हैं। इस तरह उत्सर्पिणी के बाद अवत्सर्पिणी और अवत्सर्पिणी के बाद उत्सर्पिणी बदलती रहती है। यह काल परिवर्तन का स्वभाव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके प्रत्येक में छह-छह भेद हैं। उत्सर्पिणी के छह भेद यह हैं – (१) दुषम-दुषमा (२) दुषमा (३) दुषम-सुषमा (४) सुषम-दुषमा (५) सुषमा (६) अति सुषमा। अवत्सर्पिणी के लिए इसे उल्टा समझना चाहिए।

संस्कृत भाषा में "सु' माने श्रेष्ठ है। 'दुर' माने घनिष्ठ है। इस तरह समा के साथ (सु) और (दुर) मिलने से 'सुषमा' और 'दुषमा' की उत्पत्ति होती है। 'सुषमा' कहे तो बढ़िया और 'दुषमा' कहे तो 'घटिया'।

इस तरह अवत्सर्पिणी काल का पहला जो भेद है उसका काल परिमाण चार कोड़-कोडी सागर परिमाण है। दूसरे का तीन कोड़-कोड़ी सागर है। तीसरे का दो कोड़ा-कोड़ी सागर है। चौथे का बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा-कोड़ी सागर है। पाँचवे का सिर्फ इक्कीस हजार वर्ष है। छट्टे का भी इक्कीस हजार वर्ष है।

इस तरह अवत्सर्पिणी का कुल दस कोड़ाकोडी सागर काल परिमाण है वैसे ही उत्सर्पिणी का काल परिमाण समझना चाहिए। सागर कहे तो बड़ा लंबा है। वह अपने समझ के बाहर है।

एक जमाने में भरत क्षेत्र के अंदर अवत्सर्पिणी का जो पहला अति सुषमा आरा चल रहा था उस जमाने के लोग वज्र के समान दृढ़ शरीर और सोने के समान कान्तिवाले थे तथा वे अच्छे बलशाली, शूरवीर तेजस्वी एवं पुण्यशाली होते थे। उनकी आयुष्य तीन पल्य की थी। उसी तरह नारियां भी रूप-लावण्य एवं आयु आदि से ओत-प्रोत थी। उस समय के स्त्री-पुरुष आपस में बड़े प्रेम भाव के साथ रहते थे। उन लोगों की इच्छापूर्ति कल्पवृक्षों से होती थी। वे लोग भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, अपमृत्यु, दुःख आदि कष्टों से दूर होकर बड़े आनंद के साथ अपना जीवन बिताते थे।

शरीर मजबूत होने के कारण उन्हें किसी तरह का रोग नहीं होता था। भोजन की कमी न होने के कारण किसी भी तरह का मन चंचल नहीं होता था। अकाल मरण एवं बुढ़ापा न होने के कारण किसी भी तरह की दिक्कत के बिना भोग भोग कर सानंद काल यापन करते थे। दस प्रकार के कल्पवृक्ष होने के कारण उनको आजीविका की सारी चीजें बराबर मिलती रहती थी। किसी तरह का कष्ट नहीं होता था। वहाँ की जमीन और उत्पन्न होने वाली सारी चीजें एक व्यक्ति के अधीन न होकर समाज की होने से सभी लोग समान रूप से अर्थात् उच्च-नीचता के बिना समान रूप से जीविका चलाते थे। हर चीजें हर वक्त मिल जाने के कारण भविष्य के लिए वस्तुओं को संग्रह करने की जरूरत नहीं पड़ती थी। इन्हें अपरिग्रही कहे तो आश्चर्य की बात नहीं है। वस्तुओं की कमाई एवं रक्षा से होने वाले कसूरों से मुक्त रहते थे। इस काल को भोगभूमि काल कहा जाता था। यह उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से विमुक्त था। सम मानव समुदाय कहें तो युक्ति युक्त कहा जा सकता है। आजकल भी ऐसा आनंदमय जीवन बिताने का सौभाग्य मिलता तो कितना अच्छा होता।

इस तरह का पहला, दूसरा, तीसरा भोगभूमि काल बीत गया। चौथा कर्म भूमि का काल आया। उसी समय तीर्थंकर आदि महापुरुषों का जन्म होता है। उक्त काल में चौबीस तीर्थंकर महापुरुषों ने जन्म लिया वे सब के सब करुणा के सागर होने के नाते सारी जीव राशियों के उत्थान के लिए अहिंसा प्रधान जैन धर्म का प्रचार करते थे। उनका उपदेश यह था कि सम्यग्दर्शन, सम्यज्ञान और सम्यग् चारित्र की आराधना से मोक्ष की प्राप्ति है। हर एक व्यक्ति का कर्तव्य यह है कि उनकी आराधना अवश्य करनी चाहिए। इस महामंत्र का उपदेश दूसरों को देने के साथ-साथ खुद भी उनका आचरण कर मार्गदर्शी होते हुए मोक्ष सिधारे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन धर्म की मुख्य शिक्षा यही है कि सदाचरण के बिना आत्मा का कल्याण कदापि नहीं हो सकता। **"परोपदेशेपाण्डित्यं"** इस तरह दूसरों को उपदेश देने मात्र से अपना आत्मकल्याण होना असंभव है। अतः खुद को भी आचरण करने की बड़ी आवश्यकता है। यह सुंदर शिक्षा है।

इस तरह का महत्वपूर्ण जैन धर्म अनादि काल से चला आ रहा है। परंतु अब पंचम काल चल रहा है। इस काल-दोष के कारण सद्धर्म का पतन और अधर्म का उत्थान नजर आ रहा है। इसे काल का दोष ही कहना चाहिए।

तमिलनाडू और जैन धर्म

अब हम तमिलनाडु में जैन धर्म, उसकी परिस्थिति पर विचार करेंगे।

सबसे पहले समझने की बात यह है कि आजकल तमिलनाडु जितना दिखता है, पहले इससे कई गुणा विस्तृत था अर्थात् तमिलनाडु, कर्नाटक, केरल और आंध्र सम्मिलित होकर विशाल था। इसे द्राविडनाडु के नाम से पुकारते थे और वह जैन धर्मावलंबियों का गढ़ था। यह जैन और अजैन सारे इतिहासकारों की सुनिश्चित बात है। वहाँ पर जैन धर्म और जैन संस्कृति का अच्छा प्रभाव था। क्योंकि यहाँ महान् आचार्य कुंदकुंद, समन्तभद्र और भट्टाकलंक आदि विस्तृत विद्वद् शिरोमणियों का जन्मस्थान एवं प्रचार स्थली होने के नाते जैन धर्म जगमगाता रहा। वे आचार्य गण ज्ञानसिंधु और गरिमा के प्रतीक थे। इस बात को केवल जैन ही नहीं अजैन भी तहेदिल से मानते हैं।

भगवान् महावीर तीर्थंकर का समवशरण यहाँ आने के पूर्व तमिलनाडु में जैन धर्म मौजूद था और वहाँ जैन श्रावक लोग निवास करते थे। इससे आप लोग जान सकते हैं कि ईसा के ६०० वर्ष पूर्व वहाँ जैन श्रावक थे किंतु वे कब से थे यह विचार करने की बात है। सिंधुघाटी के आधार से भी इसका निर्णय हो सकता है परंतु यह विस्तृत विषय होने के कारण संक्षेप में कहा जा सकता है कि अहिंसा प्रधान आर्यों का यहाँ आना हुआ संभवतः जैन धर्म का प्रारंभ तभी से हुआ हो। इस तरह का अभिप्राय भी प्रचलित है। चाहे कुछ भी हो इस प्रांत में बहुत समय से जैन धर्म का प्रचार रहा और जैन श्रावक लोग रहा करते थे। यह बात एक तरह से सुनिश्चित है। प्रो. ए. चक्रवर्ती का कहना भी यही है। वे सुविख्यात इतिहासकार थे।

तमिलनाडु जैन सिद्धांत और जैनत्व के अति प्राचीनतम भग्नावशेष का स्थानभूत प्राचीन देश है। यहाँ का स्थान जिनबिंब, जिनालय, शिलालेख, विज्ञान कला आदि से ओतप्रोत है। यहां पर जैनत्व के अनमोल जवाहरात बिखरे पड़े हैं। इन रत्नों का परिचय होना जैन समाज के लिए अत्यंत आवश्यक है। यदि उत्तरभारत की जैनी जनता यहाँ के खंडहरों का अवलोकन करेंगे तो स्पष्ट विदित होगा कि एक समय में जैन संप्रदाय के लोग कितनी तादाद में यहाँ रहे होंगे और उन लोगों से जैन धर्म की आराधना किस तरह से की गई होगी। यहाँ (तमिलप्रांत) के जैन धर्म तीर्थ और उन स्थानों को जाने का मार्ग आदि जानना आवश्यक समझा जायेगा।

यहाँ की परम पवित्र तमोभूमियां त्यागी महात्माओं के त्याग के रजकणों से भरी पड़ी हैं। जिस प्रकार हमारे तीर्थंकर परम देवों ने उत्तर भारत को अपने दिव्य चरणों से पवित्र किया है। तदनुसार अत्यंत उद्भट महती प्रभावना से ओतप्रोत आचार्यवर्यों ने तमिल प्रांत को एकदम पवित्र बनाया है। इस प्रदेश में दिगंबर जैनाचार्यों के संचार ने जैन संस्कृति को अत्यंत प्रगतिशील बनाया है। मगर कालवश उसका उत्थान-पतन हुआ है।

श्रुतकेवली भद्रबाहु महाराज के साथ १२ हजार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिराजों का विहार दक्षिण भारत में हुआ था। उनमें से ८००० साधु गण ने तमिलनाडु में विचरण किया था। उनके विहार से पवित्रित यह भूमि भग्नावशेषों के द्वारा आज भी उनकी पवित्र गाथाओं की याद दिलाती हुई शोभित हो रही है। काश ! जैन धर्म ज्यों का त्यों रहता तो कितना अच्छा होता। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिमित परिग्रह आदि पंचशीलों का कैसा प्रचार रहता ?

भगवान् महावीर के मोक्ष चले जाने के बाद उनके पदानुगामी कुंदकुंद महाराज की तपोभूमि इसी प्रांत में है। उसका नाम 'जोन्नूरमलै' है। वह पवित्र स्थान उनके महत्व की याद दिलाता हुआ शोभायमान हो रहा है। **अकलंक बस्ती** आह्वान करता हुआ बता रहा है कि आओ और महात्माओं के चरण-चिह्नों से आत्मसंशोधन कर प्रेरणा प्राप्त कर लो ! दक्षिण मथुरा आदि जिलों में जैन धर्मानुयायी मिट चुके हैं। परंतु यहाँ के सुरम्य पर्वतों की विशाल चट्टानों पर उत्कीर्ण जिनेंद्र भगवान् के बिंब और गुफाओं में बनी हुई वस्तिकाएँ तथा चित्रकारी आदि सब के सब अपनी अमर कहानी सुनाती रहती है।

यहाँ सैंकड़ों साधु साध्वियों के निवास, अध्ययन-अध्यापन के स्थान आश्रम आदि के चिह्न पाये जाते हैं। सिद्धन्नवासल यानैमलै कलुगुमलै समणर्मलै आदि पहाड़ है। वे दर्शनीय होने के साथ-साथ आत्मतत्त्व के प्रतिबोध के रूप में माने जा सकते हैं।

वर्तमान समय में यह प्रांत उपेक्षा का पात्र बना हुआ है। कर्नाटक प्रांत भगवान् बाहुबलि के कारण प्रख्यात है। परंतु यह प्रांत विशेष आकर्षणशील वस्तु के अभाव होने के कारण इस प्रांत की तरफ लोगों का ध्यान नहीं के बराबर है। परंतु यहाँ की तपोभूमि का अवलोकन करेंगे तो अध्यात्मतत्त्व से अमरत्व प्राप्त तपोधनों के रजकणों का महत्व अवश्य ध्यान में आ सकता है। जैनत्व की अपेक्षा से देखा जाय तो कोई भी प्रांत उपेक्षणीय नहीं है। सत्य की बात यह है कि त्यागी महात्माओं से धर्म का प्रचार होता है और वह टिका रहता है। सैकड़ों वर्षों से दिगंबर जैन साधुओं का समागम एवं संचार का अभाव होने से जैन धर्म का प्रचार नहीं के बराबर है। परंतु खद्योत के समान टिमटिमाता हुआ जिंदा ही है अर्थात् सर्वथा नष्ट नहीं हुआ है।

यहाँ की जनता सरस एवं भोली-भाली है। धर्म के प्रति अच्छी श्रद्धा है। व्यवसायी होने के नाते अपने धार्मिक कृत्य को पूर्ण रूप से करने में असमर्थ है। यहाँ के जैनी लोग संपन्न नहीं है। धर्म प्रचार के लिए भी धन की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। नीति है कि **"धनेन विना न लभ्यते क्वापि"** अर्थात् धन के अभाव में कोई भी कार्य साधा नहीं जा सकता। यहाँ पर फिर से धर्म प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। इस पर उत्तर हिंदुस्तान के संपन्न व्यक्ति अथवा संपन्न संस्था यदि ध्यान देंगे तो सब कुछ हो सकता है। अन्यथा ज्यों का त्यों ही रहेगा।

प्राचीन काल में तमिलनाडु के अंदर जैन धर्म राजाओं के आश्रय से पनपता था। चेर, चोल, पाण्डय और पल्लव नरेशों में कुछ तो जैन धर्मानुयायी थे और कुछ जैन धर्म को आश्रय देने वाले थे। इसका प्रमाण यहाँ के भग्नावशेष, और बड़े बड़े मन्दिर हैं। चारों दिशाओं के प्रवेश द्वार वाले अजैनों के जो भी मन्दिर है, वे सब एक जमाने में जैन मन्दिर थे।[१] वे सब समवशरण की पद्धति से बनाये हुए थे। बाद में जैनों का ह्रास कर ले लिये थे अब भी बहुत से अजैन मन्दिरों में जैनत्व चिह्न पाये जाते हैं।[२]

१. उन अजैनों के स्तुतिपद्य में जिनंकर (जिनगृहं) पुगुन्दु याने प्रवेश कर आता है। इससे जान सकते हैं कि एक जमाने में वह जिन मन्दिर था।
२. नागर कोयिल।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस पवित्र भूमि में जगत् प्रसिद्ध समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक,सिंहनंदी, जिनसेन, वीरसेन और मल्लिषेण आदि धुरंधर महान् ऋषियों ने जन्म लिया था। यह पावन स्थान उन तपोधनों का जन्म स्थान होने के साथ-साथ उनका कार्य क्षेत्र भी रहा था। यहाँ का कोई भी पहाड़ ऐसा नहीं है जो जैन संतों के शिलालेख, शय्यायें, वसतिकायें आदि चिह्नों से रिक्त हो।

वर्तमान में यहाँ के मन्दिरों के जीर्णोद्धार के लिए अखिल भारतवर्षीय दि. जैन महासभा एवं दि. जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी इन दोनों संस्थाओं की ओर से काफी सहायता मिल रही है। उनकी सहायता से कई मन्दिरों का जीर्णोद्धार हुआ। करीब पन्द्रह साल पहले सन् १९७७ में आचार्य श्री निर्मलसागरजी महाराज पधारे थे। वे यहाँ छः साल तक प्रचार करते रहे। उन्होंने सारे तमिलनाडु में विहार किया। उनके कारण जैन धर्म का काफी प्रचार हुआ था। उसके बाद आर्यिका गणिनी १०५ श्री विजयामती माताजी का आगमन हुआ था। उन्होंने भी छः साल तक सारी जगह विहार कर काफी प्रचार किया था। इस तरह साधु-साध्वियों के कारण प्रचार होता है।

समझने की बात यह है कि धर्म का प्रचार त्यागियों से हो रहा है और होता रहेगा। क्योंकि त्यागी लोगों को आहार, जप-तप अनुष्ठान और धर्म प्रचार के सिवाय और कोई काम नहीं है। लोग भी उनकी वाणी का आदर करते हैं। गृहस्थी में बसने वाले श्रावकों को सैकड़ों काम रहते हैं। नित्य प्रति देवदर्शन करने के लिए भी उन्हें अवकाश नहीं मिलता। आजकल नौजवानों में कालदोष एवं वातावरण के कारण धर्म के प्रति श्रद्धा कम होती जा रही है। सिनेमा, ड्रामा, रेडियो, वीडियो, टीवी आदि के विषय में दिलचस्पी ज्यादा दिखाई दे रही है। विरला ही घर ऐसा होगा जहाँ पर रेडियो और टीवी नहीं रहते हों। लोगों के दिल में कामवासना की जागृति ज्यादा दिखाई देती है। आचार-विचार दूर होता जा रहा है। भविष्य अंधकार सा दिखता है। पाश्चात्य देशों की शिक्षा भी इसका एक मुख्य कारण है। थोड़े दिनों में सदाचार का नामोनिशां रहना भी मुश्किल-सा दिख रहा है। पाश्चात्य शिक्षा के कारण युवक और युवतियां स्वतंत्र हो गये हैं। माता-पिता के आधीन नहीं रहते, ऐसे जमाने में धर्मधारणा कहाँ तक रहेगी। यह बात समझ में नहीं आती। फिर भी त्यागी महात्माओं का संपर्क बार-बार मिलता रहेगा तो थोड़ा बहुत सुधार होने की संभावना है।

तमिलनाडु में जैनाचार्यों द्वारा विरचित नीतिग्रंथ बहुत हैं, जैसे – तिरुक्कुरुल, नालडियार, अरनेरिच्चारं आदि। ऐसे महत्वपूर्ण नीतिग्रंथ होते हुए भी लोगों के दिल में सुधार नहीं हो पाता। हिंसाकांड की भरमार है। साधारण जैनेतर लोग तो छोटे-छोटे देवताओं की पूजा में तथा भक्ति में लगे हुए हैं। वे लोग मनौती करते हैं कि अमुक कार्य पूरा हो जाय तो बकरे और मुर्गियों की बलि देंगे। सरकार की तरफ से काली आदि देवियों के सामने बलि देने को मना है। फिर भी कुछ दूर जाकर छिप-छिपाते हुए बलि देते ही रहते हैं। लोग अज्ञानवश अनाचार करते हैं। उन्हें रोकना असंभव सा दिख रहा है।

यहाँ भट्टारकों की मान्यता है। यह प्रथा एक जमाने में सारे भारत में थी। उत्तर भारत में धीरे धीरे मिट चुकी है। दक्षिण में अब तक मौजूद है। वर्तमान में मेलचित्तामुर के अंदर लक्ष्मिसेन भट्टारक जी हैं। तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र में भट्टारकों की मान्यता अब भी मौजूद है। मैं समझता हूँ कि जैनधर्म के रक्षार्थ यह मान्यता आदि-शंकराचार्य के जमाने में हुई होगी। आदि शंकराचार्य जैन धर्म के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने शैव मठ की स्थापना कर कन्याकुमारी से लेकर हिमालय तक हिन्दू धर्म का प्रचार किया। जैन धर्म का ह्रास होते देखकर जैनी लोगों ने दिल्ली, कोल्हापुर, जिनकांचि, पेनुगोपडा आदि स्थानों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में मठ की स्थापना कर जैन धर्म की काफी रक्षा की थी। न जाने उत्तर भारत में भट्टारक परंपरा क्यों खत्म कर दी गई? यह समझ में नहीं आता। कुछ न कुछ कारण अवश्य होना चाहिए।

तमिलप्रांत की प्रथा यह है कि जैनियों के लड़के-लड़कियों को पहले-पहले भट्टारकों से ही पंच नमस्कार महामंत्र का उपदेश लिया जाता है। लड़कों को पंच नमस्कार मंत्रोपदेश देते समय जनेऊ पहनाया जाता है। जनेऊ का प्रचार यहाँ अब तक चलता आ रहा है। कुछ नौजवान लोग इससे दूर होते जा रहे हैं। दुबालकृष्णप्प नायकन के जमाने में सारे के सारे जैन अजैन हो गये। उनमें से वर्तमान के जैन लोग जनेऊ पहनकर जैन के रूप में दीक्षित किये गये। बचे बाकी लोग शैवधर्मानुयायी बन कर रहे गये। अब वे लोग मौजूद हैं। इसका मतलब यह है कि एक जमाने में जैन धर्म की रक्षा जनेऊ से हुई थी, इसे कभी नहीं भूल सकते।

वर्तमान में यहाँ रहनेवाले जैन लोग ज्यादातर कृषक है, अर्थात् खेती करने वाले हैं। वे लोग गांवों में रहते हैं। जैनियों के सैकड़ों गांव हैं। जैनियों के लड़के अब पढ़ने लगे हैं। अंग्रेजी का प्रचार ज्यादा है। अपने जैन युवक नौकरी भी करते हैं। वकील, इंजीनियर, डॉक्टर ऑडिटर और अध्यापक आदि पदवीधर हैं। धनाढ्य नहीं के बराबर हैं। हर गांव में जैन मंदिर है। कुछ दुरावस्था में है। धनाभाव के कारण कुछ मंदिरों का जीर्णोद्धार नहीं हो पा रहा है। पुरुषों की अपेक्षा नारियों को धर्म के प्रति श्रद्धा ज्यादा है। कुछ लोग देवदर्शन आदि नित्यकर्म करते हैं। फिर भी शिथिलता पाई जाती है। परंतु सर्वथा अभाव नहीं है।

यहाँ की तमिल भाषा में ग्रंथ बहुत है। धनाभाव के कारण कुछ अप्रकाशित भी है। जैन ग्रंथों को जैनियों की अपेक्षा अजैन लोग प्रकाशन में लाते हैं। क्यों कि जैन धर्म के ग्रंथ उत्तमोत्तम है। ऐसे महत्वपूर्ण ग्रंथ अन्य धर्म में नहीं है। इसका उदाहरण नीलकेशी, जीवकचिंतामणि, मेरुमंदर पुराण आदि हैं। जैन लोगों की अपेक्षा अजैन लोग इन्हें चाव से पढ़ते हैं। इसमें सब तरह का महत्व भरा पड़ा है।

यहाँ का मौसम बड़ा अनुकूल है। यहाँ न तो गर्मी है, न सर्दी। सम शीतोष्ण है। आश्विन-कार्तिक बरसात का मौसम है। यहाँ पर अधिकतर धान और मूँगफली पैदा होती है। गन्ना भी पैदा किया जाता है। यहां के लोगों का मुख्य खाना चावल है। कभी-कभी गेहूँ का उपयोग किया जाता है। हल्का खाना होने से चावल सुपाच्य है। जैन और ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य लोग ज्यादातर मांसाहारी हैं। गांवों में जैनियों का निवास स्थान अलग रहता है। वहाँ मांस बेचनेवाले जाते ही नहीं। इस तरह जैन लोग गांवों में पृथक् रहकर अपना आचरण करते हैं। अन्य मत वाले जैनियों का आदर करते हैं। परंतु आजकल कम होता जा रहा है।

यहाँ की जैन संस्कृति का ह्रास अधिकतर शैववालों से हुआ है। एक जमाने में तमिलनाडु जैन वाङ्मय से और कला कौशल से समृद्ध था। यह ऐतिहासिक तथ्य है। ऐसा कला केंद्र देश इस तरह अवनति की हालत में आने का कारण क्या था ? केवल मत-द्वेष, धर्म के नाम से जो संघर्ष हुआ था, उसी कारण यह हालत हुई। असत्य के द्वारा सत्य छिपाया गया था। अहिंसावादी धर्मात्मा लोगों को खत्म कर दिया गया था। अन्य लोगों का यह विचार रहता था कि अहिंसावादी रहेंगे तो अपना हिंसात्मक कांड नहीं चलेगा। अतः इन लोगों को किसी न किसी तरह से खत्म कर देना है। इस तरह कंकण (राखी) बांधकर नाश किया गया था। प्रजा अनभिज्ञ थी। उसे सत्यासत्य का विचार नहीं था। अनभिज्ञता के कारण झूठे चाल-बाजियों के जाल में प्रजा फँस जाती थी तथा अकृत्य भी कर डालती थी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कौटुंबिक, जातीय, धार्मिक कोई भी वैषम्य याने विद्वेष होता हो, तो उससे होने वाली भवितव्यता पर मानव की दृष्टि नहीं जाती। चाहे सगे-संबंधी क्यों न हो ? किसी न किसी तरह से विपक्ष वालों को हरा देना ही एक मात्र प्रण लिया जाता था। यह चरित्र प्रसिद्ध प्रामाणिक बात है।

इतिहास पर जरा दृष्टि डालिए। पृथ्वीराज को हराने के लिए जयचंद ने मुहम्मद गोरी को बुलाया था। जयचंद को मालूम नहीं था कि पृथ्वीराज की जो हालत होगी। एक दिन वही हालत मुझे भी भुगतने पड़ेगी। क्रोध से अंधा व्यक्ति इस बात को कहाँ सोचता है ? फिर जयचंद की क्या हालत हुई थी दुनिया जानती है। इसी तरह इब्राहिम लोदी ने अपने रिश्तेदार को हराने के लिए बाबर को बुलाया था। परंतु बाद में इब्राहिम लोदी की क्या दशा हुई थी? इसका इतिहास साक्षी है।

इसी तरह ८वीं सदी में आपसी वैमनस्य के कारण तमिलनाडु में भी दो साम्राज्य समाप्त हुए। कांजीपुर के पल्लवनरेश का राज्य एवं दक्षिण मथुरा के पाण्डय नरेश का राज्य – इन दोनों की हालत भी यही रही।

पहले के जमाने में कोई भी धर्म हो वह पनपने एवं सुरक्षित होने के लिए राज्यसत्ता की जरूरत पड़ती थी। **"यथा राजा तथा प्रजा"** राजा जिस धर्म को अपनाता है या आदर करता है उसकी उन्नति होती थी। प्रजा के अंदर न्याय और अन्याय के विषय में विचार करने की न तो शक्ति थी, न कर सकती थी। राजा किसी भी धर्म को या धर्मवालों को खतम करना चाहे तो वह आसानी से कर सकता था। न तो प्रजा पूछ सकती और न कोई दूसरा पूछ सकता था। राजा सर्वेसर्वा था और उसकी हुकूमत प्रजा पर सर्वोपरि थी।

आठवीं सदी तक तमिलनाडु में जैन धर्म पनपता रहा। जैन धर्म का प्रचार प्रसार होता रहा। लोगों में अहिंसा का अस्तित्व पूर्ववत् रहा। सभी अहिंसा के पुजारी रहे। साथ ही साथ जनता के आचरण में सत्य और सदाचार का परिपालन होता रहा। किंतु कुछ हिंसावादी लोगों को यह पसंद नहीं आया। वे लोग विरोध करने लगे। बस, यही बात सत्य है।

तमिलनाडु के अंदर शुरू से जैन, बौद्ध, शैव, वैष्णव धर्म के लोग अपने-अपने आचरण करते आ रहे थे राज्य सत्ता जिस ओर झुकती वह धर्म बढ़ता और जिस ओर न झुकती वह धर्म घटता रहता था। प्रजा इस प्रकार कुछ न कर सकती थी। उसे न अधिकार था और न विचारशीलता थी। लेकिन ये चारों धर्मवाले प्रेमभाव से मिलजुल कर नहीं रहते थे अर्थात् आपस में लड़ते रहते थे।

जैन, बौद्ध दोनों अहिंसावादी थे। जैन लोग अहिंसावादी होने के साथ-साथ मांसाहार के विषय में तीव्र विरोधी थे। बौद्ध लोग मांसाहार के विरोध में कुछ भी कहे बिना सिर्फ अहिंसा प्रचार किया करते थे। इस विषय में जैन लोग सहमत नहीं थे। जैनों के ग्रंथ मांस खाने पर खूब खंडन करते थे। उदाहरण के लिए देखिए तमिलनाडु के नीति प्रधान कुरल काव्य में बताया गया है कि **"कोल्लान पुलालै मरुत्तानै कै कूप्पि-एल्ला उयिरुं तोलुं"** – इसका मतलब यह है कि जो मानव हिंसा नहीं करता है, वह साथ-साथ मांस का भी त्यागी रहेगा तो उसे संसार के सारे जीव हाथ जोड़ नमस्कार करेंगे।

देखिए कितनी मधुर बात है शायद, बौद्धों का खण्डन करने के लिए ही तिरुक्कुरल के कर्ता ने अहिंसा के साथ-साथ मांस त्याग पर भी जोर दिया हो। इस तरह जैन धर्म का दृष्टिकोण लोगों के आचार-विचार पर केन्द्रित था इसलिए जैनाचार्यों ने तिरुक्कुरल, नालडियार, अरनेरिच्चारं आदि नीति ग्रंथों की सृष्टि की थी। इस तरह भरमार नीति ग्रंथों की रचना किसी भी अन्य भाषा में या किसी भी प्रांत में नहीं देखी जा सकती है। इस तरह नीति प्रधान आचरण भी कुछ हिंसामय क्रियाकांड वालों को पसंद नहीं आता था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हम देखते हैं कि दुनियाँ के अंदर धर्म के नाम पर नीति प्रधान सदाचार का प्रचार होवे तो उसे भी अन्य धर्म वाले सहन नहीं करते चाहे न्याय हो अथवा अन्याय हो, किसी न किसी तरह से उस धर्म का समूल नष्ट करने के लिए उतारू हो जाएंगे। उसके लिए राज्यसत्ता की जरूरत पड़े तो उसे भी अपनी तरफ खींचने के लिए तैयार हो जाएंगे। बस, यही हालात तमिलनाडु में जैन धर्म की हुई थी।

जैन धर्मोन्नति के समय में शैव-वैष्णव धर्म उतनी उन्नति पर नहीं थे। तमिलनाडु में जैन धर्म को गिराने में शैव धर्म वाले आगे रहे। वैसे ही कर्नाटक में वैष्णव धर्म वाले आगे रहे। पहले शैव धर्म में भी हिंसा का जोर नहीं था बाद में कापालिक वाममार्ग के लोग आकर घुसे । वे लोग हिंसामय क्रियाकांड पर जोर देने लगे। जैन लोग हिंसा के विरोधी थे ही। इसलिए जैन लोगों को अलग करने एवं नीचा दिखाने की दृष्टि से वेद को आधार शिला बनाकर जैन लोगों को अविरत, अन्यविरत, अयज्ञ, अतांत्रिक आदि शब्दों के द्वारा खण्डन करने के साथ-साथ मांसाहार की पुष्टि करते रहे।

उन लोगों का विचार यह था कि साधारण जनता को अपनी तरफ खींचना है। वह सदाचार को बोझ सा समझती है। मांस खाना, मदिरा पीना, भोग भोगना और मनमानी चलाना यह सब के लिए इष्ट है। इस पर नियंत्रण रखना साधारण लोगों के लिए एक तरह बोझ (Burden) है। इस तांत्रिकवाद को वे लोग अच्छी तरह समझते थे अतः उन लोगों का प्रचार इस तरह होने लगा कि देवताओं के नाम पर बलि देना। धर्मशास्त्र के अनुसार अनुचित नहीं है बल्कि उचित ही है। शिवजी ने नरबलि चाही। देखो, इसका आधार **तिरुतोण्ड नायनार पुराण** है। मांस खाना अनुचित नहीं है क्योंकि शिवजी ने **कण्णप्प नायनार** से दिये हुए मांस को खाया।[१]

कापालिक लोगों के संबंध होने के बाद ही शैव धर्म में कमियाँ आने लगी। कापालिक लोगों को मदिरा पीना, मांस खाना, भोग भोगना सर्वसाधारण था। अतः कुछ लोग प्रजा को अपनी ओर खींचने का प्रयास कर रहे थे।

उस समय जैनधर्म का जोर था। तिरुक्कुरल, नालडियार, अरनेरिच्चारं आदि आचार ग्रंथों का प्रचार होने से कापालिक उन्हें अपने मार्ग पर खींचने में असमर्थ हो रहे थे। उसके बाद उन लोगों ने एक नाटक खेला। एक व्यक्ति के दो बच्चे थे – एक लड़का एक लड़की। लड़के का नाम था तिरुनावुक्करसु और लड़की का नाम था तिलकवती। तिरुनावुक्करसु बड़ा हुआ, उसका कापालिक मार्ग पर आदर भाव था।

संबंधन नाम का एक व्यक्ति था। उसको भी कापालिक मार्ग में आदर भाव था इसलिए संबंधन और तिरुनावुक्करसु दोनों मिलकर षड्यंत्र रचने लगे। उन लोगों की योजना यह थी कि तिरुनावुक्करसु को कपटी जैन संन्यासी बनाया जाय तथा उसे पाटलीपुत्र (तिरुषापुलियुर) जैन मठ में शामिल करा दिया जाय। उसका जैन साधु के बराबर सारा आचरण रहे। फिर क्या करना है ? उसे पीछे से बताया जायेगा।

इस कूटनीति के अनुसार तिरुनावुक्करसु को कपटी जैन संन्यासी बनवाकर पाटलीपुत्र के जैन मठ में प्रवेश कराया। जैन साधु होने के बाद उसका नाम "धर्मसेन" रखा गया। जैन साधुगण मायाचार से दूर रहने वाले थे। उनको इन लोगों का कपट व्यवहार मालूम नहीं था। वे लोग धर्मसेन को सच्चा साधु समझते थे। कुछ दिन ऐसा चलता रहा। संबंधन और तिलकवती (तिरुनावुक्करसु की बहन) दोनों इस पर निगरानी रखते थे।

१ तमिलरवीच्चि पेज नं १०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसके बाद एक दिन 'धर्मसेन' नाम का कपट संन्यासी पेट दर्द का बहाना बनाकर एकदम चिल्लाने लगा। जैन साधु गण वास्तव में दर्द समझकर मणि-मंत्र-औषधि के द्वारा चिकित्सा करने लगे, दर्द शांत नहीं हुआ, बढ़ता ही गया। वह जोर-जोर से चिल्लाकर रोता था। वास्तव में पेट दर्द होता तो चिकित्सा से ठीक हो जाता। यह तो मायाचार था। कैसे शांत होता ? जैन साधुगण असमंजस में पड़ गये। क्या किया जाय ?

इतने में यह समाचार सुनकर धर्मसेन की बहन तिलकवती आयी। भाई को तसल्ली दी और कहने लगी कि शैव धर्म को छोड़ने से ही यह हालत हुई। तुम पर भगवान् शिवजी का कोप है। यह सब उनकी माया है। घबराओ मत। मैं शिवजी की विभूति (राख) लायी हूं। उसे शिवजी का नाम लेकर पेट पर लगाओ। सब ठीक हो जायेगा। ऐसा ही लगाया गया। फौरन दर्द ठीक हो गया। अर्थात् ठीक हो जाने के बाद यह नाटक का पहला दृश्य था।

फिर लोगों में यह प्रचार शुरू कर दिया कि जो पेट दर्द जैनों के मणि-मंत्र औषधि आदि से ठीक नहीं हो सका ऐसा भयंकर दर्द शिवमहाराज की राख से एक क्षण में ठीक हो गया। देखो, शिवजी की महिमा। इस तरह शिव की महिमा के बारे में खूब प्रचार करने लगे। कपट संन्यासी के रूप में जो 'धर्मसेन' था वह जैन धर्म को छोड़कर फिर से शैव धर्म में आ गया और 'अप्पर' के नाम से शैव भक्तों में प्रधान बन गया। इस तरह यह पहला नाटक था।

उन लोगों का प्रचार यह था कि जो कुछ भी कर लो परवाह नहीं परंतु शिवजी की भक्ति अवश्य करना। शिवजी सबको क्षमा कर देंगे। लोग अपनी दिक्कत से मुक्त हो जाएंगे। जैनों के ज्ञानमार्ग में कुछ नहीं है। केवल आचरण पर जोर देते रहते हैं। ढोंगी हैं और मायाचारी हैं। उन लोगों की बात पर विश्वास करना नहीं। इस तरह उन लोगों का प्रचार होता था।

कापालिकों का यहाँ तक हद से ज्यादा प्रचार था कि "जितना भी भोग कर लो परवाह नहीं शैव भक्त होकर शिवजी की भक्ति करने लग जाय तो भगवान् शिवजी क्षमा कर देंगे।"[२]

"ललाट पर राख लगाओ और रुद्राक्ष (एक फल की माला) गले में रहे तो काफी है। अन्य कोई आचार-विचार के ऊपर ध्यान देते फिरने की जरूरत नहीं।" इस तरह भक्तिमार्ग पर जोर देते हुए प्रचार करने लगे। साधारण प्रजा कुछ नहीं समझती थी। जो मार्ग आसान रहता है जिसमें कठिनाई नहीं है उसे अपनाने लग जाती थी।

इस तरह भक्तिमार्ग का प्रचार करने के साथ-साथ जैन मन्दिरों के जिनेंद्र भगवान् को हटाकर बलात्कार के साथ शिवलिंगजी की स्थापना करते जाते थे। जहाँ कहीं इस तरह जबरदस्ती से मन्दिरों को परिवर्तित किया गया था, उक्त गांव के नाम आज भी जैनत्व को जता रहे हैं। जैसे अरहन्तनल्लूर जिनप्पल्लि[३] आदि।

अप्पर (तिरुनावुक्करसु) के साथ **संबंधन** नाम का व्यक्ति मिला हुआ तो था ही। इन दोनों का विचार यह था कि किसी न किसी तरह से आचार्य वसुनन्दि द्वारा स्थापित मूलसंघ को खतम करना है। उक्त संघ की शाखा तमिलनाडु भर में फैली हुई थी। जैन धर्मावलम्बियों पर उनका प्रभुत्व था। वे (जैन लोग) मरते दम तक तर्कवाद करते थे। वे तर्कशास्त्र में निपुण थे इसलिए उन शैव भक्तों का विचार यह था कि उन्हें (जैन तर्कवादियों को) जीतना है तो कपट व्यवहार से जीत सकते हैं न कि तर्कवाद से । इसका रास्ता क्या है ? इसे ढूँढना आवश्यक है। यह कापालिक शैवों का विचार था।

१. तमिलरवीचि पेज नं १६, २. तमिलरवीचि पेज नं २५ ३. तमिलरवीचि पेज नं ३४, २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबंधन को दैवी शक्तिमान एवं शिवजी के दूत के रूप में प्रचलित किया जाता था। यह बात राजा पाण्डय का आमात्य **"कुलच्चिरै"** को मालूम हुई । वह पक्का शैव भक्त था। पाण्ड्य नरेश जैन धर्मावलंबी था। अमात्य ने रानी **"मंगैयर्क्करसी"** को येन केन प्रकारेण शैव धर्मानुयायिनी बना लिया था। फिर क्या था ? ये दोनों मिलकर जैन धर्म को खत्म करने के कार्य में षडयन्त्र करने लगे।

इन दोनों में संबंधन (शिवदूत) को मथुरा (दक्षिण) बुला लिया। वहाँ एक मठ में उसे ठहराया गया था। संबंधन के द्वारा श्रमण (जैन) धर्म के विरुद्ध खूब प्रचार किया गया। बाद में उन्हीं लोगों ने उस शैवमठ पर आग लगा दी उल्टा प्रचार इस तरह किया गया था कि जैन लोगों ने ही शैव मठ पर आग लगा दी। उस समय जैनों पर जितना उपद्रव करा सकते थे उतना किया गया था।

उसके बाद दूसरा नाटक तैयार किया गया था कि शिवदूत नाम का जो संबंधन था, उसके मुँह से शाप दिलाया गया था कि शैव मठ पर जो आग लगा दी गई थी उसके दंडस्वरूप **राजा पांड्य** के पेट में भयंकर दर्द हो जाय। रानी शैव धर्मानुयायिनी तो थी ही उसने छिप छिपाकर राजा के भोजन में पेटदर्द होने की दवाई दे दी थी राजा पेट के दर्द के मारे तड़पता था। श्रमण (जैन) लोगों ने बढ़िया दवाईयाँ दी थी। रानी बहाना बनाकर उसे नहीं खिलाती थी। उसका विचार यह था कि किसी न किसी तरह से राजा को शैव बनाना है। फिर संबंधन को बुला लिया गया। उसने आकर "शिवायनमः' कहते हुए पेट के ऊपर विभूति लगायी। पेट दर्द फौरन ठीक हो गया। विचार करने की बात यह है कि कोई भी बीमारी हो दवाई से ही ठीक हो सकती है। वहाँ दवाई है नहीं सिर्फ राख से हो जाती है। क्या यह बात विश्वास करने लायक है ? बिलकुल नहीं। यह नाटक तो सिर्फ मत (धर्म) प्रचार के सिवाय और कुछ नहीं है। अनभिज्ञ राजा पेट दर्द ठीक हो जाने से वह राख की महिमा समझ कर स्वयं शैव भक्त बन गया, नहीं-नहीं, बना दिया गया था। देखिए कैसी विडंबना है ?

राजा को अपनी इच्छा के अनुसार शैव बना लिया गया, उन लोगों के नाटक का दूसरा मंच भी पूरा हो गया था। फिर क्या था? राजा को वश में रखकर श्रमणों (जैनों) को खतम करने का काम बाकी था। उसके लिए भी जो करना था वह भी शुरू कर दिया गया। वह यह था कि श्रमणों (जैनों) के साथ शास्त्रार्थ किया जाय उसमें जो हार जाते हैं, उन सबको शूली पर चढ़ाकर मार दिया जाय। इसके लिए शिवजी से सिफारिश मांगी गई थी।[४] हर एक कार्य में श्रमणों को खतम कर देना – इसका भार शिवजी के ऊपर डाल दिया जाता था। ये सारी बातें **संबंधन तेवारं** में आती हैं। परंतु यहाँ समझने की बात यह है कि संबंधन ने अपने तेवारं ग्रंथ में यह बात नहीं लिखी थी, अर्थात् श्रमण लोगों के द्वारा शैव मठ को आग लगा दी गई थी। इस बात से जान सकते हैं कि जैनों पर शैवमठ के ऊपर आग लगाने का आरोप बिल्कुल कल्पित है।

फिर श्रमणों के साथ (जैनों) शास्त्रार्थ (वाद) करने का निश्चय किया गया था। शास्त्रार्थ वह कहलाता है कि स्वपक्षी प्रश्न पूछेगा, उसका विपक्षी जवाब देगा। जवाब न देने पर उसे हारा हुआ समझा जाता है। मगर यहाँ पर विचित्र शास्त्रार्थ था। वह यह था कि अपने पक्ष के ताड़पत्र को लिखकर पानी में डाला जाय, उनमें जिसका पत्र पानी के प्रवाह में बह जाय वह हार गया है। जिसका उल्टा वापस आवे वह जीता हुआ समझा जायेगा। यह कैसा शास्त्रार्थ था पता नहीं ? उन शैव लोगों वाली गाली में लिखते हैं कि **"सावायुं वादुसेय समणर टाल"** अर्थात् जैन लोग मरते दम तक वाद (शास्त्रार्थ) करने वाले हैं। इसलिए छल-कपट के द्वारा जैनों पर हार की छाप लगा

३ तमिलरवीचि ४ संबंधन तेवारं वेदवेल्वियै।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दी गई थी। उन लोगों ने निरपराध श्रमण (जैन) साधुओं को सूली पर चढ़ा कर मार दिया था। इस प्रसंग को पुराण में भी लिख रखा है और दक्षिण में मथुरा में आज तक उसका उत्सव भी मीनाक्षी मंदिर में मनाते हैं। देखिए कैसी मानसिकता है ?

समझने की बात यह है कि खास कर जैन साधुओं को खत्म करने का कारण यह था कि उन साधुओं के कारण से ही श्रमण (जैन) धर्म का प्रचार होता था। अतः उन साधुओं को खत्म कर दें तो अपने आप जैन धर्म खत्म हो जाएगा। इसी कारण से श्रमण साधुओं को खत्म कर दिया गया था। तथा जैन धर्म के अनुयायिओं को मारपीट कर भगा दिया गया था। उनकी जमीन जायदाद छीन ली गई, महिलाओं का शीलभंग किया गया। इस तरह जैन लोगों पर भयंकर अत्याचार किया गया था। जैसे पाकिस्तान में हिंदुओं पर हुआ था। इसका आधार उन्हीं लोगों के **शैवपेरिय पुराणं तेवारं** आदि है। खैर हुआ सो हुआ। हमें तो मत द्वेष कितना भयंकर है, इस पर ध्यान देना है। यह सारी बातें सातवीं सदी एवं आगे पीछे की है।[१]

जैन धर्म पर क्रमशः आपत्ति पर आपत्ति आती रहीं। दूसरा उपद्रव यह था करीब तीन सौ साल के पहले जिंजी प्रदेश को वेंकटप्प (कृष्णप्प) नायक नाम का छोटा राजा राज्य करता था, वह विजयनगर साम्राज्य के अधीन था। उससे भी धर्म की बड़ी हानि हुई थी?[२]

इस तरह जैनों और जैन साधुओं पर कई आपत्तियाँ आई । जैन साधु लोग कीड़े-मकोड़े से लेकर मनुष्य तक के किसी भी जीव को किसी तरह का दुख या कष्ट देने वाले नहीं थे, **"जिओ और जीने दो"** – इस सिद्धांत (महामंत्र) को पालने वाले थे। ऐसे संतों पर भी अत्याचार एवं अनाचार होता है, हुआ था। इसका ही नहीं, निर्दयता के साथ हजारों साधुओं को कत्ल किया गया था। खास कर साधुओं के प्रति विद्रोह करते थे। अफसोस! कैसा भयंकर मत द्वेष रहा। काश! हर धर्मवाले आनंद के साथ अपने-अपने धर्म का आचरण कर सकते ! न जाने अन्य धर्म के विनाश में क्यों खुशी मनाते थे ? यही बात समझ में नहीं आती है। खैर, क्या करे ? मनुष्य का स्वभाव है। उसे मिटाया नहीं जा सकता। सब धर्मों में ऐसा होता है। जो हुआ सो हुआ अब कहना-करना क्या है ? कुछ नहीं केवल पछताना है। इसके सिवाय और कुछ नहीं।

✤ ✤ ✤

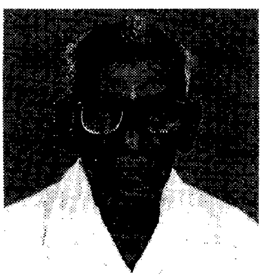

❑ श्री मल्लिनाथ जी जैन 'शास्त्री' तमिल, संस्कृत, हिन्दी, प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। आपने शास्त्री, न्यायतीर्थ, प्रवीण प्रचारक की परीक्षाएं उत्तीर्ण कीं। त्यागराय कॉलेज-मद्रास में ३० साल तक हिन्दी के प्राध्यापक रहे। तमिल में २५ ग्रन्थों के प्रकाशक तथा प्रसिद्ध जैन ग्रंथों के समीक्षक। हिन्दी भाषा में भी आपके पाँच ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। संप्रति : लेखन -संपादन एवं अनुवादक, 'जैन गजट' के सह संपादक, मद्रास सम्यग्दर्शन जैन संघ तथा कर्नाटक जैन विद्वद् संघ के अध्यक्ष।

— सम्पादक

१ समणमुत्तं तमिलु पेज -८१
२ समणसुत्तं तमिलु पेज -८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org